के मैदान, अतिथि गृह, कम्प्यूटर सेवायें, छात्रावास आदि को भाड़े पर उठायें। कई कालेजों ने तो अपनी इमारतों को शादी-ब्याह के लिए देना शुरू ही कर दिया है, अब वह दिन भी दूर नहीं लगता जब क्लास करने पहुंचे छात्रों को पता चले कि लेक्चर हाल तो किसी कम्पनी के 'प्रेजेंटेशन' के लिए भाड़े पर उठा हुआ है। वैसे शुरुआत हो चुकी है। आई.आई.टी. दिल्ली ने अपने कैम्पस में ही दैत्याकार कम्प्यूटर कम्पनी आई बी एम को अपनी प्रयोगशाला स्थापित करने के लिए विशाल बिल्डिंग लीज पर दे दी है। आई.आई.टी. की फैकल्टियों में 'इंटेल' और 'माइक्रोसाफ्ट' जैसी कम्पनियों के लैब खुल चुके हैं।

दरअसल इन सारी आम छात्र-विरोधी हरकतों के पीछे बाजार-भक्त भाजपा सरकार का एक और छिपा उद्देश्य है। वह है गरीब छात्रों को विश्वविद्यालय तक पहुंचने ही न देना। इसका कारण यह है कि अमीरजादों के लिए तो बेरोजगारी कोई समस्या नहीं है, वे डिग्री के बलबूते रोजगार नहीं पायेंगे तो पैसों से पा जायेंगे या फिर पूंजी के दम पर कोई व्यवसाय कर लेंगे। लेकिन एक गरीब और निम्न मध्यवर्गीय नौजवान यह सब कुछ नहीं कर सकता। ऐसे नौजवान जब डिग्रियां लिये बेरोजगार घूमेंगे, इधर-उधर चप्पलें फटकायेंगे तो उनके मन में एक असंतोष, गुस्सा और व्यवस्था के विरुद्ध रोष तो पनपेगा ही। जब वे समझ जायेंगे कि मौजूदा व्यवस्था में एक गरीब छात्र के लिए इन डिग्रियों का कोई महत्व नहीं, तो विद्रोह की भावना तो पैदा होगी ही। ऐसे नौजवानों की विद्रोह-भावना, गुस्सा और असंतोष इस व्यवस्था की कब्र खोद सकते हैं। इसीलिए इस बाजारू व्यवस्था के कर्ता-धर्ता लोगों के लिए यही भला होगा कि ऐसे नौजवान परिसर तक पहुंच ही न पायें। नतीजतन ऐसी नीतियां लागू की जा रही हैं और आगे भी लगातार लागू की जाती रहेंगी।

अपने इन मंसूबों को पूरा करने के लिए इस सरकार में जबर्दस्त हड़बड़ी है। सारे काम बेहद तेजी से किये जा रहे हैं। दिल्ली विश्वविद्यालय के कालेजों में फीस वृद्धि इसी सत्र से लागू कर दी गयी है। कई कालेजों में तो 100 से 140 फीसदी तक बढ़ोत्तरी हुई है, मसलन रामजस कालेज में।

छात्र-युवा अब और कितना इंतजार करेंगे? अब भी अगर हम नहीं जागेंगे और सस्ती व सर्वसुलभ शिक्षा के अपने अधिकार के लिए नहीं लड़ेंगे तो फिर कब जागेंगे ! ●

उत्तर प्रदेश सरकार की उच्च शिक्षा सुधार योजना-2000

फीस बढ़ाओ सीटें घटाओ! छात्रों को काठ का उल्लू बनाओ!! चूं-चपड़ करने पर डण्डे चलाओ!!!

सुनील चौधरी

उत्तर प्रदेश में उच्च शिक्षा की खराब गुणवत्ता से चिन्तित सरकार आजकल 'उच्च शिक्षा सुधार योजना-2000' पर मुस्तैदी से अमल कर रही है। इसके तहत विश्वविद्यालयों-कालेजों में भारी शुल्क वृद्धि, 75 प्रतिशत उपस्थिति अनिवार्य करना, सीटों में व्यापक कटौती, समान पाठ्यक्रम लागू करना, छात्रसंघ के ढांचे में फेरबदल और परीक्षा-प्रणाली में सुधार लागू करने की नीति पर वह चल रही है। लेकिन, सरकार के मंत्रियों, सरकारी बुद्धिजीवियों, शिक्षा नौकरशाहों, शासन की वफादारी में डटे हुए कुलपतियों और दिग्भ्रमित बुद्धिजीवियों को छोड़कर शायद ही कोई संजीदा व्यक्ति सोचता हो कि इन उपायों से उच्च शिक्षा की गुणवत्ता पर कोई फर्क पड़ने वाला है। तो आखिर शासन की असली मंशा क्या है?

वैसे, आज आम आदमी बिल्कुल अच्छी तरह यह जान चुका है कि शासन की असली मंशा अघोषित होती है जो नतीजों से जाहिर होती है। और अब नतीजे जाहिर कर चुके हैं कि शिक्षा में "सुधार" के पीछे सरकार का पहला मकसद है कैम्पसों से मेहनतकशों के बेटे-बेटियों को खदेड़ना और डण्डा राज कायम कर छात्रों की सत्ताविरोधी आवाजों का गला घोंटना। समग्रता में अर्थव्यवस्था की तर्ज पर शिक्षा का भी बाजारीकरण करना व भूमण्डलीकरण के दौर में शासक वर्ग की नयी जरूरतों के मद्देनजर शिक्षा तंत्र को ढालना।

फीसों में बढ़ोत्तरी-सीटों में कटौती : मुसीबत टालने का हथकण्डा

सामान्य बुद्धि का कोई भी व्यक्ति यह समझ सकता है कि आखिर शुल्क वृद्धि और सीटों में कटौती से उच्च शिक्षा की गुणवत्ता का क्या सम्बन्ध? इसके पीछे शासन की मंशा सिर्फ यह है कि उच्च शिक्षा संस्थानों में सिर्फ उतने ही छात्र दाखिला लें और डिग्री हासिल करें जितने कल-पुर्जों की मौजूदा पूंजीवादी तंत्र को जरूरत है। "रोजगार विहीन विकास" के मौजूदा दौर में यदि भारी संख्या में उच्च शिक्षा की डिग्रियां हासिल किये नौजवान बेरोजगारी में भटकते रहेंगे तो शासन के लिए मुसीबत पैदा करेंगे। इस बला को टालने के लिए ही शुल्क वृद्धि, सीटों में कटौती और प्रवेश परीक्षाओं की बाड़ खड़ी की गयी है।

शुल्क वृद्धि के पक्ष में दिये जा रहे सभी तर्क सिर्फ फरेब हैं। प्रदेश सरकार संसाधनों का रोना रो रही है। उसका कहना है कि विश्वविद्यालयों-कालेजों को स्वायत्त बनाने की नीति के तहत विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (यू.जी.सी.) ने अनुदानों में भारी कटौती कर दी है। इसलिए सिर्फ अपने संसाधनों के बूते प्रदेश सरकार उच्च शिक्षा का बोझ वहन करने में असमर्थ है। विश्वविद्यालयों-कालेजों को इस परिस्थिति में अपने संसाधन खुद जुटाने ही होंगे।

यू.जी.सी. किन मजबूरियों में स्वायत्तता का नारा उछाल रही है, इसे फिलहाल छोड़कर प्रदेश सरकार की मजबूरी पर आयें। सच्चाई यह है कि प्रदेश की खस्ताहाल अर्थव्यवस्था में मंत्रियों के जो ठाठ हैं उसकी तुलना सिर्फ अरब देशों के शेखों से की जा सकती है। सत्तारूढ़ होने के बाद से प्रदेश के जम्बो मंत्रिमंडल के मंत्री हर साल करोड़ों रुपये चाय-नाश्ते में उड़ा देते हैं। सरकारी यात्राओं-समारोहों और उनकी सुरक्षा पर हर साल करोड़ों रुपये खर्च होते हैं। पिछले दो वर्षों में ही इन मदों में 42 करोड़ रुपये खर्च हो चुके हैं। मंत्रियों-विधायकों के वेतन-भत्ते और अन्य सुविधाएं लगातार बढ़ती जा रही हैं लेकिन शिक्षा पर व्यय का बोझ सरकार नहीं उठा पा रही है। कैसी दिलचस्प मजबूरी है यह!

बात साफ है कि चाहे यू.जी.सी. हो या प्रदेश सरकार—उच्च शिक्षा के राजकीय दायित्वों से पूरी तरह मुंह मोड़कर शिक्षा को पूंजी निवेश का क्षेत्र और शिक्षा को महंगा

बिकाऊ माल बना देना चाहती है। उच्च शिक्षा को बाजार तंत्र के हवाले कर देना चाहती है। जाहिर है बाजार में माल वही खरीद सकता है जो उसकी कीमत अदा कर सके।

यदि सरकार का मकसद वाकई गुणवत्ता बढ़ाने का होता तो सबसे पहले सरकार शिक्षा की सुविधाओं में बढ़ोत्तरी करती और हजारों की संख्या में खाली पड़े शिक्षकों के पदों पर नियुक्तियां कर छात्र-शिक्षक अनुपात को अपने घोषित मानदण्डों के अनुसार पूरा करती, न कि सीटें घटाती और फीसें बढ़ाती।

75 प्रतिशत उपस्थिति की अनिवार्यता : छात्रों को सामाजिक सरोकारों से काटने की चाल

उच्च शिक्षा की गुणवत्ता सुधारने के नाम पर सरकार ने एक और कदम उठाया है—कक्षाओं में 75 प्रतिशत उपस्थिति की अनिवार्यता। जिन छात्रों की उपस्थिति इससे कम होगी वे परीक्षा से वंचित कर दिये जायेंगे। डण्डे के जोर से कक्षाओं में छात्रों को बैठाकर पढ़ाने से उच्च शिक्षा का स्तर कैसे ऊपर उठेगा यह शासनभक्त शिक्षाविद् ही बता सकते हैं। बहरहाल उनका तर्क है कि उपस्थिति की बाध्यता से छात्र बेवजह परिसरों में नहीं घूमेंगे। इससे परिसरों में अनुशासन बहाल होगा और छात्र-अराजकता पर अंकुश लगेगा।

सरकारी शिक्षाविद शिक्षा के प्रति आम छात्रों की बढ़ती अरुचि के कारणों की तह में नहीं जाना चाहते। शिक्षा को जब डिग्री हासिल करने का पर्यायवाची बना दिया जायेगा, जब जीवन के ठोस सवालों से अलग करके उसे नीरस-उबाऊ किताबी ज्ञान अर्जित करने तक सीमित कर जायेगा और हर प्रकार की मानवीय सर्जनात्मक, सहज मानवीय जिज्ञासाओं को कुण्ठित करने का गैर जनवादी शैक्षिक वातावरण होगा तो छात्रों के अन्दर कक्षाओं में बैठने का चाव नहीं पैदा हो सकता। जब युवा वर्ग की ऊर्जा और सर्जनात्मकता के प्रस्फुटित होने की जगह नहीं मिलेगी तो वे अपनी जगह खुद तलाशने की कोशिश करेंगे। ऐसे में, बाह्य सामाजिक परिवेश में मौजूद सांस्कृतिक प्रदूषणों का शिकार हो वे अराजक गतिविधियों की ओर भी उन्मुख होंगे। छात्रों के अन्दर कक्षाओं में बैठने के प्रति अरुचि के ये प्रमुख कारण हैं। परन्तु सरकार और उसके शिक्षाविदों ने पाठ्यक्रमों को अधिक सृजनात्मक बनाने, अध्ययन-अध्यापन के वातावरण को अधिक जनवादी बनाने के बजाय 'डण्डा मारो कक्षा में बैठाओ' फार्मूला लागू करने का फैसला लिया है।

साफ जाहिर है कि सरकारी इरादे कुछ और हैं। सरकार की चिन्ता यह नहीं है कि कक्षाओं से भागकर छात्र अराजकता फैलाते हैं। वह आम छात्रों को किताबों, कक्षाओं और परीक्षाओं में इसलिए उलझाये रखना चाहती है कि जिससे वे शासन की जनविरोधी नीतियों के खिलाफ गोलबन्द और संगठित होकर किसी तरह की चुनौती न पैदा कर सकें जो परिसरों में अराजकता और गुण्डागर्दी फैला रहे हैं, उन्हें इन नियमों को ठेंगा दिखाने में कोई दिक्कत नहीं होगी। और वैसे भी, यह बात कोई भी समझ सकता है कि संसद-विधानसभाओं में बैठे अराजक तत्वों एवं समाज विरोधी तत्वों को परिसरों में पल रही अपनी नयी फसल से भला क्यों कर चिन्ता होगी?

सीमित अकादमिक स्वायत्तता एवं वैचारिक आजादी पर हमला : समान पाठ्यक्रम एवं परीक्षा-प्रणाली में परिवर्तन

सरकार मौजूदा सत्र से प्रदेश के सभी विश्वविद्यालयों में बी.ए. स्तर पर एक समान पाठ्यक्रम लागू करना चाहती थी, किन्तु पर्याप्त तैयारियों के अभाव में फिलहाल इस सत्र से यह लागू नहीं हो पा रहा है। लेकिन सरकार इसे लागू करने के लिए कटिबद्ध है।

इस निर्णय को लागू कर प्रदेश सरकार ने विश्वविद्यालयों की सीमित अकादमिक स्वायत्तता और वैचारिक आजादी को भी हड़प लेने की चाल चली है। अब तक विश्वविद्यालयों को यह स्वतंत्रता थी कि वे विभिन्न विषयों के पाठ्यक्रम खुद तैयार करायें। इसमें इस बात की गुंजाइश रहती थी कि विभिन्न विषयों में, विशेषकर कला एवं सामाजिक विज्ञानों से सम्बन्धित विषयों में प्रगतिशील सोच के शिक्षक अपेक्षाकृत अधिक वैज्ञानिक दृष्टिकोण से प्रगतिशील धारा के साहित्यकारों-रचनाकारों-चिन्तकों की रचनाओं के अध्ययन को पाठ्यक्रम में शामिल करा लेते थे। लेकिन, सरकार के इस निर्णय के लागू होने के बाद ये सम्भावनाएं पूरी तरह खतम हो जायेंगी और पहले से अधिक घोर प्रतिक्रियावादी, पुरातनपंथी, सत्ताधर्मी पाठ्यक्रम छात्रों पर थोप दिये जायेंगे। सरकार की साफ मंशा है कि छात्र किसी भी प्रकार के "खतरनाक" विचारों के सम्पर्क में न आयें और सत्ताभक्त बनकर चुपचाप सरकारी पाठ्यक्रमों का घोंटा लगायें।

यह अकादमिक संस्थानों का संघीकरण करने की भाजपाई रणनीति का ही अंग है जिसके तहत उसने पिछले दिनों आई.सी.एच. आर., एन.सी.ई.आर.टी. आदि संस्थानों पर हमला बोलकर उन्हें पूरी तरह भगवा रंग में रंगने की कोशिश की है।

परीक्षा प्रणाली में परिवर्तन के पीछे भी सरकार का असली मकसद यही है कि छात्र सिर्फ कक्षाओं और परीक्षाओं की भूलभुलैया में भटकते रहें। पांच प्रश्नों को रटकर उन्हें उत्तर पुस्तिकाओं पर लिख देने की पद्धति के बजाय अब प्रश्न पत्र इस तरह तैयार कराये जायेंगे जिसका उत्तर देने के लिए छात्रों को पूरे पाठ्यक्रम का घोंटा लगाना पड़ेगा। (लगेगा अब भी घोंटा ही) इससे शिक्षा की गुणवत्ता पर तो कोई खास फर्क नहीं पड़ेगा, हां इतना जरूर होगा कि कक्षाओं में 75 प्रतिशत उपस्थिति और भारी-भरकम पाठ्यक्रम को रटने के मानसिक तनाव में छात्र आत्मकेन्द्रित होकर सामाजिक सरोकारों से पूरी तरह कट जायेंगे। इससे उनके दिमागों में सत्ता का आतंक घर करेगा। आम छात्र कायर एवं दब्बू बनेंगे तथा सत्ता की अभ्यर्थना की मानसिकता पनपेगी। यह मन:स्थिति फासिस्ट निरंकुशशाही के लिए उपजाऊ जमीन होती है और सरकार ठीक यही चाहती है।

छात्रसंघ के ढांचे में तोड़फोड़

छात्रों के जनतांत्रिक अधिकारों को हड़पने की साजिश : परिसरों की अराजकता दूर करने के नाम पर परिसरों की अराजनीतिकरण एवं छात्रों के जनतांत्रिक अधिकारों को ही हड़प लेना—छात्र-युवा आन्दोलनों से निपटने का शासक वर्गों का पुराना हथकण्डा है यह। कोठारी आयोग ने यह सिफारिश 1964 में ही की थी, लेकिन उस समय छात्र-युवा आन्दोलनों की मजबूती के चलते इन पर अमल न हो सका था। फिर 1986 में राजीव गांधी के प्रधानमंत्रित्व काल में नयी शिक्षा नीति के तहत इसे फिर से लागू करने की शुरुआत हुई। इस समय तक पूंजीवादी पार्टियों से जुड़ी छात्र राजनीति आम छात्रों से पूरी तरह कटकर अप्रासंगिक हो चुकी थी और क्रान्तिकारी छात्र आन्दोलन भी देश स्तर पर अपने गतिरोध से उबर नहीं सका था। यह स्थिति कमोबेश आज भी बनी हुई है। इसीलिए, 1986 से छात्रों के जनतांत्रिक अधिकारों को हड़पने का जो सिलसिला शुरू हुआ था, वह शिक्षा के बाजारीकरण के मौजूदा दौर में एक नये मुकाम पर पहुंच गया है। इसी नीति के तहत उत्तर प्रदेश सरकार ने पिछले सत्र से ही छात्र संघ के ढांचे में तोड़फोड़कर उसे पंगु बनाने का और प्रशासन की जेबी संस्था

बनाने की शुरुआत की है और पूरे प्रदेश में छात्र संघों के लिए नया संविधान और चुनाव की नयी आचार संहिता लागू की है। देश के कई विश्वविद्यालयों में इस तरह के संविधान को पहले ही लागू किया जा चुका है।

छात्र संघ के नये संविधान और नयी आचारसंहिता के बारे में 'आह्वान' के जनवरी-मार्च 2000 अंक में (गोरखपुर विश्वविद्यालय के हवाले से) एक विस्तृत लेख दिया जा चुका है। निचोड़ यही है कि छात्रों के जनतांत्रिक अधिकारों को पूरी तरह हड़प लिया जाये। छात्र संघ को ही भंग कर दिया जाये।

निचोड़ के तौर पर, **उत्तर प्रदेश में उच्च शिक्षा में सुधार के नाम पर जो भी कदम उठाये जा रहे हैं वे घोर छात्र विरोधी हैं। शिक्षा की गुणवत्ता बढ़ाने से उनका कुछ भी लेना-देना नहीं है। सरकार इस बात को बखूबी समझ रही है कि निजीकरण-उदारीकरण के दौर में जिन जनविरोधी-छात्र विरोधी नीतियों पर वह अमल कर रही है उससे छात्र-युवा असन्तोष बढ़ता ही जा रहा है, जिसे एक न एक दिन फूटना है। इस असन्तोष को दबाने और शिक्षा व्यवस्था को देशी-विदेशी पूंजीपतियों की नयी जरूरतों के अनुसार ढालने की कोशिश के तहत ही ये सारे कदम उठाये जा रहे हैं। इसी कोशिश के तहत ही विश्वविद्यालय परिसरों को पुलिस-पी.ए.सी. की छावनी में तब्दील कर दिया गया है।**

स्पष्ट है कि शासक वर्ग ने अपनी तैयारियों में कोई कोर-कसर नहीं छोड़ी है। छात्र-युवा आखिर कब चेतेंगे और मुकाबले के लिये तैयार होंगे।

> जो बोलते हो उसे सुनो भी
>
> अध्यापक,
> अकसर मत कहो कि तुम सही हो
> छात्रों को उसे महसूस कर लेने दो
> खुद-ब-खुद
> सच को थोपो मत :
> यह ठीक नहीं है सच के हक में
> बोलते हो तो उसे सुनो भी।
>
> ○ बेर्टोल्ट ब्रेष्ट

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय में नयी आचारसंहिता लागू

जे.एन.यू. परिसर का जनतंत्र अब प्रशासकों की आंखों में चुभने लगा

ललित सती

देश के अपेक्षाकृत सबसे खुले और जनतांत्रिक माहौल वाले जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय (जे.एन.यू.) के नये सत्र की शुरुआत उसपर एक नयी दमनकारी आचार-संहिता थोपने के साथ हुई है।

आज जब देशभर में शिक्षा परिसरों में डण्डाराज कायम किया जा रहा है तो जे.एन.यू. का जनतंत्र भला प्रशासकों की आंखों में क्यों न खटकता! हमेशा की तरह इस आचारसंहिता के पीछे भी परिसर को अराजकता से मुक्त करने, "कानून-व्यवस्था" बहाल करने और छात्रों के कल्याण के ही तर्क दिये गये हैं। लेकिन इसके मोटे-मोटे प्रावधानों पर नजर डालने से ही साफ हो जाता है कि कल्याण किसका होना है और इसका असली मकसद क्या है।

इस आचार-संहिता में दुराचरण और अनुशासनहीनता की दो कोटियां निर्धारित की गयी हैं और उनकी सख्त सजाएं मुकर्रर की गई हैं। पहली कोटि में हिंसात्मक गतिविधियों या यौन शोषण के अतिरिक्त "घेराव करना विश्वविद्यालय परिसर के किसी सदस्य के आवास की घेराबंदी करना या उसके सामने प्रदर्शन करना, या किसी भी प्रकार से दबाव डालना, डराना या कैम्पस के निवासी के एकान्तता के अधिकार को भंग करना" भी शामिल है। इस तरह के दुराचरण और अनुशासनहीनता के दण्ड के रूप में दाखिले को रद्द किया जा सकता है या डिग्रियां वापस ली जा सकती हैं या विशेष अवधि के लिए रजिस्ट्रेशन रोका जा सकता है या चार सेमेस्टर के लिए निष्कासित किया जा सकता है।

यानी कि अपनी वाजिब मांगों को लेकर घेराव, घेराबंदी, या प्रदर्शन करना हिंसा और यौन-शोषण के समान ही अपराध होगा। इन गैर जनतांत्रिक कदमों की लिस्ट यहीं खत्म नहीं होती। दूसरी कोटि में यह कहा गया है "भूख हड़ताल, धरना, ग्रुप बार्गेनिंग और अकादमिक या प्रशासनिक भवनों के प्रवेश और निकास को बंद करके होने वाले किसी भी विरोध और अकादमिक समुदाय के किसी भी सदस्य की गतिविधियों में कोई भी विघ्न" सहन नहीं किया जायेगा। इस तरह की अनुशासनहीनता और दुराचरण के लिए 20,000 रुपये तक का जुर्माना, दोषी छात्र के लिए किसी भी या सभी अकादमिक प्रक्रियाओं पर रोक और दो सेमेस्टर तक निष्कासित करने जैसी सजाएं निर्धारित की गई हैं। इसके अलावा छात्रावास के किसी कमरे में बाहरी व्यक्ति के रुकने, सभाएं आदि करने के लिए भी कड़ी सजाएं तय की गई हैं।

प्रत्यक्षतः जे.एन.यू. परिसर को अन्य सभी परिसरों से भी अधिक गैर-जनतांत्रिक और निरंकुश बनाने की कोशिश शुरू हो चुकी है। उसी जे.एन.यू. परिसर को जो अपने जनतांत्रिक माहौल, खुलेपन, उदारता और प्रगतिशीलता के लिए जाना जाता था। दरअसल इस फासिस्ट कदम के पीछे वही कारण हैं जो देश भर के अनेक विश्वविद्यालयों में लागू हो रही नयी फासिस्ट आचार संहिताओं के पीछे हैं। नई आर्थिक नीतियों के लागू होने के बाद से शिक्षा बेतरह महंगी हुई है। छात्रों में असंतोष बढ़ रहा है। इस असंतोष से होने वाले भावी विस्फोट को कुचलने के लिए परिसरों के दमनतंत्र को नये हरबे-हथियारों से लैस करना जरूरी था। लेकिन जे.एन.यू. में यह करना मुश्किल था क्योंकि इस विश्वविद्यालय की स्थिति अन्य विश्वविद्यालयों से भिन्न थी। जे.एन.यू. सामाजिक और राजनीतिक तौर पर सचेत छात्रों का केन्द्र था। बुर्जुआ समाज में सम्भव अकादमिक स्वतंत्रता, उदारता, खुलेपन की दृष्टि से जे.एन.यू. देशभर में एक मिसाल था। एकाएक यहां जनतंत्र का गला घोंट पाना कठिन था। लेकिन पिछले कुछ अरसे में जे.एन.यू. की प्रकृति में कुछ ऐसे बदलाव हुए हैं जिसके चलते उनका काम आसान हो गया। पिछले दिनों जे.एन.यू. परिसर में बलात्कार और छात्राओं को डराने की जो घटनाएं हुईं उसके बाद